International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 4, Issue 8, August 2017
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

"निचले गंगा–यमुना दोआब का पुरातत्त्वः नवीनतम अनुसंधानों के आलोक में"

(प्रारम्भ से 1200 ई0 तक)

डॉ0 अखिलेश कुमार चौबे
प्रवक्ता,
किसान आदर्श कन्या महाविद्यालय,
बेलवां, सिसवा, महराजगंज

दोआब की भूमि अत्यन्त उपजाऊ होती है, जो अनेक दृष्टियों से महत्व रखती है। इसी कारण से दोआब से संबंधित क्षेत्र प्राक् युग से ही अनेक प्रकार की पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक गतिविधियों के केन्द्र रहे हैं। गंगा–यमुना दोआब का निचला भाग वस्तुतः ऊपरी गंगा घाटी का ही पूर्वी भाग है, जिसके अन्तर्गत कानपुर नगर, कानपुर देहात, फतेहपुर, कौशाम्बी और इलाहाबाद जिले सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में भिन्न–भिन्न समयों में मानव ने विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों को सम्पन्न किया, जिसके पुरावशेष यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। इन पुरावशेषों के अध्ययनानुसंधान हेतु पुराविदों ने समय–समय पर उत्खनन एवं सर्वेक्षण कार्य किया, जिससे इस क्षेत्र के पुरातत्त्व पर कुछ प्रकाश पड़ा। इस शोध पत्र में नवीनतम पुरातात्त्विक अनुसंधानों के आलोक में निचले गंगा–यमुना दोआब के पुरातत्त्व को जनपदवार उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

इस क्रम में हम सर्वप्रथम कानपुर जनपद की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। यह जनपद अब दो भागों में विभाजित होकर दो जनपद बन गया है–कानपुर नगर और कानपुर देहात। सर्वप्रथम इस जनपद के 'मूसानगर' नामक स्थल से एम0 एम0 नागर ने 1955–56 ई0 में एक प्रस्तर कुल्हाड़ी और कुछ श्रृंग एवं कुषाण मूर्तियाँ प्रतिवेदित किया। यहीं से बी0 बी0 लाल को कुछ एन0 बी0 पी0 वेयर प्राप्त हुए।[1] नागर ने 1956–57 और 1957–58 में उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग की ओर से 'जाजमऊ' नामक स्थल का उत्खनन करवाया, जिससे यहाँ धूसर मृद्भाण्ड परम्परा के कुछ पात्र–खण्ड, अधिक मात्रा में एन0 बी0 पी0 वेयर, लौह उपकरण, हस्तिदंत निर्मित चूड़ियाँ, पासा, टेराकोटा और बाट इत्यादि प्राप्त हुए।[2]

एल0 एम0 बहल ने 1960–62 ई0 में इस क्षेत्र में विस्तृत सर्वेक्षण किया, फलस्वरूप 'निबियाखेड़ा' नामक स्थल से एक इष्टिका निर्मित मंदिर का पुरावशेष मिला, जिसे 10वीं शताब्दी का माना गया।[3] उन्होनें जाजमऊ से चित्रित धूसर मृद्भाण्ड एवं एन0 बी0 पी0 वेयर प्राप्त किया। 'बरहट' नामक स्थल से भी एन0 बी0 पी0 प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त 1962–63 ई0 में बहल ने कानपुर तहसील के बैरी तथा सनोन नामक स्थल से एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा के पात्रों को खोज निकाला।[4] बहल ने 1964–65 ई0 मे सर्वेक्षण के दौरान कानपुर के 'मगरसा' नामक स्थान से सूर्य देव की एक विशाल प्रतिमा प्रतिवेदित किया। इसके चारों तरफ अन्य खण्डित मूर्तियाँ भी मिलीं। इसी दौरान उन्होंने 'भदसा' नामक स्थल से एन0 बी0 पी0 परम्परा के पात्रों के खण्डितांश को प्राप्त किया।[5] इसके अलावा उन्होंने 1965–66 ई0 में 'अटावा', जहाँगीराबाद और लालपुर से भी एन0बी0पी0 वेयर परम्परा के पात्रों को खोजा। जहाँगीराबाद से चित्रित धूसर मृद्भाण्ड और ब्लैक एण्ड रेड वेयर को भी प्राप्त किया। उन्होंने 'अमौर' नामक ग्राम में ईट निर्मित मंदिर के अवशेषों के बारे में भी सूचना दिया। उन्हें 'मुरहला' और 'सीसुपुर' नामक गाँवों से उमा–माहेश्वर गणेश, विष्णु, सूर्य और गजव्याल की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुईं।[6]

राज्य पुरातत्त्व विभाग, उत्तर प्रदेश की ओर से आर0सी0 सिंह ने 1967–68 में कानपुर जिले में विस्तृत सर्वेक्षण कार्य किया। इन्होंने बिहुपुर, पदरी तथा लालपुर से एन0बी0पी0 मृद्भाण्ड, काले चमकीले तथा चिकने

© **Associated Asia Research Foundation (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

लाल रंग के मृद्भाण्ड को प्राप्त किया। इसी वर्ष बहल ने करचालीपुर से एन0बी0पी0 तथा मूसानगर से एन0बी0पी0 मृद्भाण्डों के साथ पेन्टेड ग्रेवेयर भी प्राप्त किया। इन्होंने घाटमपुर तहसील के बेहटा, भिड़हर, खेड़ा, कुरसेण्डा, लखन, मूसानगर और पहेवा से उत्तरगुप्त तथा मध्यकालीन विष्णु, हर–गौरी, महिषासुरमर्दिनी, सूर्य, गणेश की मूर्तियों की उपस्थिति की सूचना दिया। 'चुन्नर' नामक स्थान से नक्काशीदार ईटों से निर्मित मंदिर का भी पता चला।[7]

बहल ने अपने पुरातात्त्विक अनुसंधान कार्यों को आगे बढ़ाते हुए 1968–69 में चांदपुर र्योना से एन0बी0पी0 वेयर तथा यमुना नदी के वामतटवर्ती 'समूटी' नामक स्थल से कुषाणयुगीन एक विशाल प्रतिमा की सूचना दिया। इसी वर्ष उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग की ओर से के0सी0 ओझा ने अपने सहयोगियों के साथ कानपुर जनपद का 'विलेज–टू–विलेज' सर्वेक्षण किया। इस दौरान अनेकों मध्य कालीन ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ प्राप्त हुई। उन्होंने करचालीपुर के प्राक् टीले से एन0बी0पी0 वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर, ब्लैक स्लिड वेयर परम्परा के पात्रों को खोजा। उन्होंने 'जाजमऊ' से बौद्ध धर्म की छाप अंकित किए हुए एक मुहर को भी प्रतिवेदित किया।[8] बहल ने नेमनिआ खेरा से गुप्त मूर्तियों को सूचित किया।

राज्य पुरातत्त्व विभाग उत्तर प्रदेश की ओर से 1970–71 में कानपुर तहसील के अमलीपुर, अटवा, कल्याणपुर, नौबस्ता, नौरंगाबाद, पीपर, भुल, खिरसा पनकीगंगा, रमईपुर, कुरैन आदि का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप मध्यकालीन मूर्तियाँ एवं प्राचीन टीले से प्राप्त एन0बी0पी0, ब्लैक स्लिप्ड, पालिस्ड रेड तथा रेड मृद्भाण्डों के खण्डितांश सूचित किये गये। विभाग की ओर से सांस्कृतिक अनुक्रम निर्धारित करने के उद्देश्य से जाजमऊ का परीक्षणात्मक पुरातात्त्विक उत्खनन 1973–74, 1974–75 तथा 1976 में कराया गया। फलस्वरूप दो कालों–मौर्य एवं कुषाण, के अनुक्रमिक पुरावशेष प्राप्त हुए। बाद में उत्खनन हुआ, तो तीन सांस्कृतिक कालों के अस्तित्व का पता चला। इनमें से प्रथम काल एन0बी0पी0 मृद्भाण्डों एवं पकी हुई तथा धूप में सुखी हुई चार प्रावस्था में निर्मित ईंटों का प्रतिनिधित्व करता है। द्वितीय काल में तीन प्रावस्था में निर्मित पकी हुई ईंटों का साक्ष्य मिला है। तृतीय काल में चाकू की धार वाले कटोरे, गोल आधार वाले बर्तन, शंक्वाकार खोखले घुण्डीयुक्त ढक्कन आदि प्राप्त हुए है।[9]

इसके अनन्तर कई वर्षों तक लगातार पुराविदों द्वारा किये गये पुरातात्त्विक अनुसंधानों से कानपुर जनपद का पुरातत्त्व उद्घाटित हुआ। इस क्रम में 'उझान' नामक पुरास्थल से प्राप्त गोलाकार टेराकोटा मुद्रा, जिस पर ब्राह्मी लिपि में 'वाग्पालसा' लिखा है, उल्लेखनीय है कि इस पर केन्द्र में गोलाकार गाँठ बनाकर दो लिपटे हुए सर्पो का अंकन है। बहल को 'ख्योरा' नामक स्थान से पेटेंड ग्रे वेयर, एन0बी0पी0 वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर एवं रेड वेयर परम्परा के पात्र प्राप्त हुए। यहीं से उन्हें आयातकार आकृति युक्त ताँबे का सिक्का मिला, कलशयुक्त बोधिसत्व मैत्रेय की दो प्रतिमाओं के साथ ही अन्य बहुसंख्यक मूर्तियों की प्राप्ति के बारें में सूचना दिया। अरूण कुमार के सर्वेक्षणों से 1978–79 में भेरामपुर पुरास्थल से ब्राह्मण धर्म से संबंधित बहुसंख्यक मूर्तियाँ प्राप्त हुईं, जिन्हें दशवीं सदी का माना गया।[10]

कानपुर शहर से लगभग 24 कि0मी0 उत्तर–पश्चिम में अवस्थित नोन्हा–नरसिंह मंदिर से 1981–82 में एक लेख मिला, जिसे कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार शासक भोज (836–39 ई0) का माना गया है। संस्कृत भाषा के इस लेख की छठीं पंक्ति में 'श्री शुभादित्य' तथा 10वीं पंक्ति में 'पद्मप्रभमुनि' का उल्लेख है।

उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग के आर0 के0 श्रीवास्तव और के0के0 सिंह ने राकेश तिवारी के निर्देशन में 1992–93 में घाटमपुर और भोगिनी तहसील का 'विलेज–टू–विलेज' सर्वेक्षण किया, जिससे चपरेहटा से सुसज्जित वेदिका, ईंटें एवं मृण्मूर्तियाँ, गौसगंज से पूर्व–मध्यकालीन सूर्य प्रतिमा, हलिया से ब्लैक एण्ड रेड, एन0बी0पी0 एवं रेड वेयर, केशवा से पूर्व मध्य कालीन खण्डित मूर्तियाँ, कतर से लेखयुक्त शुंगकालीन प्रस्तर स्तम्भ और साकेट तथा र्यूना से यमुना की प्रतिमा प्रकाश में आयी।[11]

राकेश तिवारी के निर्देशन में कानपुर देहात के भोगिनीपुर तहसील के मूसानगर स्थित एक टीले का 1995–96 में उत्खनन करवाया गया, जिसके परिणामस्वरूप चार सांस्कृतिक कालों के प्रमाण प्राप्त हुए। प्रथम काल में रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर; द्वितीय काल में ब्लैक स्लिप्ड वेयर, रेड वेयर, ब्लैड एण्ड रेड वेयर, पेंटेड ग्रे वेयर ; तृतीय काल में ब्लैक स्लिप्ड वेयर, रेड वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर पेंटेड ग्रे वेयर, एन0बी0पी0 वेयर चतुर्थ काल में शुंग–कुषाण कालीन रेड वेयर तथा पंचम काल से गुप्त एवं परवर्ती गुप्त कालीन पुरावशेष प्राप्त हुए है।[12]

निचले गंगा–यमुना दोआब में हुए, पुरातात्त्विक अनुसंधानों में फतेहपुर जनपद से प्राप्त पुरावशेष दर्शनीय हैं। एस0सी0 चन्द्रा ने 1958–59 में एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा के पात्रों को बिन्दुअल, मोराँव और किलारमन में चिन्हित किया।[13] एल0 एम0 बहल ने खागा नामक स्थल का सर्वेक्षण 1960–61 में किया, जहाँ से पेंटेड ग्रे वेयर और एन0बी0पी0 वेयर के खण्डितांश मिले। 1962–66 तक किये गये सर्वेक्षणों से उन्हें सतोन और गलाथा से एन0बी0पी0 वेयर प्राप्त हुए। गलाथा से ही पी0जी0डब्ल्यू0 भी प्राप्त हुए।[14] बहल ने 1976–77 में

जनपद के उत्तरी क्षेत्र में विस्तृत सर्वेक्षण किया, जिसमें सरहन नामक स्थल से ईष्टिका निर्मित दो मंदिर दृष्टिगत हुए। इस मंदिर को शैलीगत विशेषताओं के आधार पर दशवीं सदीं का माना गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में वी0डी0 मिश्र, जे0एन0 पाल, आर0सी0 सिंह, बी0जी0 पाण्डेय, डी0पी0 शर्मा, पी0 सिन्हा, डी0एन0 तिवारी तथा एम0सी0 गुप्ता ने 1978–79 में फतेहपुर जनपद का विस्तृत सर्वेक्षण किया। इस दौरान बहुआ बारागाँव, कसराँव, रामपुर और रेह आदि पुरास्थलों से एन0बी0पी0 वेयर ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ग्रे वेयर एवं रेड वेयर प्राप्त हुए। इसके अलावा बारागाँव, चिन्तापुर, गम्भीरी, हथगाँव, किर्तिखेरा, नवबस्ता, संखा आदि पुरास्थलों से पूर्व मध्यकालीन अवशेष प्राप्त हुए।[15]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के डी0एन0 तिवारी और ओ0पी0 पाण्डेय ने 1980–81 में 'विलेज–टू–विलेज' सर्वे किया, जिसके फलस्वरूप मदवा, रानीपुर, मदवाडीह, सराय से एन0बी0पी0 वेयर, अमनी, गरहा फतेहगढ़, हुसैनगंज, कबरा, मनवा से एन0बी0पी0 एवं ब्लैक स्लिप्ड वेयर, अमनी, गरहा, पैनगढ़ से मृण्मूर्तियाँ तथा एकदाला से शक–पार्थियन मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई।[16] भगरोल नामक स्थान से खागा के तहसीलदार की अभिरक्षा में रखी चन्द्रगुप्त द्वितीय की एक स्वर्ण मुद्रा प्राप्त हुई, जिसके पुरो भाग पर स्थानक मुद्रा में धनुष और बाण लिए हुए राजा की आकृति का अंकन है। इस पर ब्राह्मी लिपि में मुद्रा लेख 'चन्द्रः' और 'श्रीविक्रम' अंकित है।[17] जे0एन0 पाण्डेय ने जनपद में 1991–92 में सर्वेक्षण के दौरान शाहपुरा नामक पुरास्थल से कुषाण कालीन लघु मृण्मूर्तियाँ और अन्य पुरानिधियों को संग्रहित करवाया।[18]

निचले गंगा–यमुना दोआब में प्राप्त पुरावशेषों में कौशाम्बी जनपद से पुरावशेषों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस जनपद को भारतीय पुरातत्त्व के मानचित्र पर लाने का श्रेय अलेक्जेण्डर कनिंघम को दिया जाता हैं। सर्वेक्षण से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उन्होंने बताया कि वर्तमान कोसम ही प्राचीन कौशाम्बी था। इसकी पुष्टि बाद में घोषिता राम महाविहार के उत्खनन से हुई। इसका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य ऐतरेय एवं गोपथ ब्राह्मण तथा कौषीतकी उपनिषद् में कुरू–पंचाल के साथ किया गया है। रामायण तथा पुराणों में भी इसका उल्लेख हुआ है। बौद्ध तथा जैन परम्पराओं में भी इस जनपद का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय में छठी शाताब्दी ई0पू0 के महाजनपदों में वत्स की राजधानी कौशाम्बी का उल्लेख हुआ है। विदेशी यात्री फाह्यान तथा हुएसांग ने भी अपने यात्रा वृत्तांत में कौशाम्बी का उल्लेख किया है। अभिलेखों में भी कौशाम्बी का उल्लेख हुआ है। यहाँ सर्वप्रथम 1936–37 से 1937–38 में एन0 जी0 मजूमदार ने उत्खनन करवाया। इस पुरास्थल के महत्व को उजागार करने का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के जी0आर0 शर्मा को दिया जाता है। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ 1949–65 तक निरन्तर उत्खनन कार्य करवाया।[19] चार विभिन्न क्षेत्रों 1. अशोक–स्तम्भ क्षेत्र 2. घोषितराम विहार क्षेत्र 3. पूर्वी द्वार के पास रक्षा प्राचीन तथा उत्तर–पूर्वी कोने पर स्थित बुर्ज पर और 4. राज प्रासाद क्षेत्र, पर उत्खनन करवाया गया।

अशोक स्तम्भ क्षेत्र में उत्खनन के परिणामस्वरूप लगभग 32 फुट का आवासीय जमाव तीन संस्कृतियों के साक्ष्यों को अपने में समेटे हुए मिला। पहली संस्कृति चित्रित धूसर पात्र–परम्परा की है, जिसमें पात्र–खण्डों की संख्या कम है। एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा से सम्बन्धित निर्माण के आठ स्तर प्राप्त हुए हैं। इनमें से प्रथम 5 से भवन निर्माण कार्य में प्रयुक्त मिट्टी तथा कच्ची ईंटों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में भवनों का निर्माण पकी ईटों से होने लगा था। इस क्षेत्र में उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा के बाद भी लोग निवास करते रहे, जो मुख्यतः लाल रंग की पात्र–परम्परा का उपयोग करते थे। तृतीय सांस्कृतिक काल के कालनुक्रम का निर्धारण कौशाम्बी से प्राप्त मित्र शासकों के सिक्के से करते हैं, जिन्हें पुरालिपि एवं मुद्रा–सम्बन्धी साक्ष्यों के आधार पर द्वितीय शताब्दीं ई0पू0 में रखा जा सकता है। शक–पह्लव तकनीक पर बनी मिट्टी की मूर्तियाँ तथा कुषाणों के सिक्के तृतीय सांस्कृतिक काल के ऊपरी स्तरों से मिले हैं। सम्भवतः इस क्षेत्र में आवास की निरन्तरता गुप्तकाल तक चलती रही। यहाँ से कनिष्क की एक मुहर मिली, जिस पर 'महाराजस्य रजति राजस्य देव पुत्रस्य, कनिष्कस्य, प्रयोग' अंकित है।

कौशाम्बी के टीलें के पूर्व घोषिताराम विहार के ध्वंशावशेष विद्यामन हैं। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण घोषित नामक पूँजीपति ने गौतम बुद्ध और उनके अनुयायियों के कौशाम्बी में निवास हेतु कराया था। उत्खनन के परिणामस्वरूप एक विहार प्रकाश में आया। यहाँ से निर्माण के 17 स्तर परिलक्षित हुए। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में आवास की परम्परा एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा के साथ प्रारम्भ हो गयी थी। इस महाविहार के उत्खनन से पता चलता है कि इसका निर्माण छठी शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्ध में हुआ। इसका पुनर्निर्माण विभिन्न समयों में होता रहा। उत्खननोपरान्त अस्तित्व में आया विहार, विहार और चैत्य का मिला–जुला रूप प्रतीत होता है। इसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर था। द्वार के बगल में हारीति एवं कुबेर का एक चैत्यगृह प्रकाश में आया है, जिसमें हारीति, गजलक्ष्मी और कुबेर की विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित थीं। विहार के मध्य में एक आंगन था, जिसके उत्तरी एवं पूर्वी भागों में भिक्षु–भिक्षुणियों के रहने के लिए छोटे–छोटे कक्ष बने हुए थे, जिसके आगे बरामदे बने हुए थे। पश्चिमी भाग खुले मैदान के रूप में था, जहाँ भिक्षु इकट्ठा होते थे। विहार के आंगन में एक बहुत बड़ा वर्गाकार स्तूप था। इसका आकार 24.70 X 24.70 मीटर था। इसके अलावा एक अण्डाकार स्तूप तथा तीन छोटे–छोटे स्तूपों के अवशेष भी मिले।

उत्खाननोपरान्त कुषाणयुगीन लेखयुक्त कतिपय ऐसी प्रतिमाएँ मिली हैं, जिनका निर्माण तो मथुरा में हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र होने के कारण स्थापना भिक्षुणी बुद्धमित्रा ने कौशाम्बी में करायी थी। इसके अलावा यहाँ से मौर्य–शुंग और शक–पह्लव कालों की लघु मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं। रजत एवं ताम्र निर्मित आहत सिक्के तथा लेख रहित ढले हुए सिक्के प्राप्त हुए हैं। अनेक लघु अभिलेख भी दर्शनीय हैं। स्मरणीय है कि यहाँ से घोषिताराम के संघ की एक ऐसी मुद्रा प्राप्त हुई है, जिस पर धर्म–चक्र का पूजन करते हुए दो हिरण उत्कीर्ण हैं तथा अभिलेख 'कौशाम्याम् घोषिताराम–महाविहारे भिक्षु संघस्य' अभिलेख अंकित है। तोरमाण हूण शासक की मुद्रा भी मिली है।

रक्षा प्राचीर पूर्वी प्रवेश द्वार के पास स्थित है। कौशाम्बी की सुरक्षा व्यवस्था का अध्ययन करने हेतु यहाँ पर उत्खनन करवाया गया। पूर्वी प्रवेश द्वार के समक्ष एक 350 फुट लम्बी तथा 90 फुट चौड़ी मिट्टी की दीवाल थी। इसके तथा सुरक्षा दीवाल के मध्य 25 फुट चौड़ा मार्ग था। खाई के बाहर की ओर एक बुर्ज 27 फुट की दूरी पर था, जिसकी चौड़ाई 140 X 90 फुट थी। सुरक्षा प्राचीर के ऊपर दो बुर्ज थे। इस जगह खाई की चौड़ाई 480 फुट थी।

पुरावशेषों से पता चलता है कि यहाँ पर प्रथम आवास से अन्तिम आवास के मध्य 54 फुट का कुल जमाव था, जिसमें नगर का सम्पूर्ण इतिहास निहित था। इसे 25 निर्माण कालों में विभाजित किया गया है। कौशाम्बी में पूर्वी प्रवेश द्वार पर किये गये उत्खनन से प्राप्त पात्र–परम्पराओं के आधार पर चार सांस्कृतिक कालों के अस्तित्व के बारे में पता चलता है। प्रथम से लेकर चतुर्थ निर्माण काल रेड वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर से संबंधित है। इसको 1165 ई0पू0 से 885 ई0 का माना गया है। द्वितीय सांस्कृतिक काल पी0जी0 डब्ल्यू0 पात्र–परम्परा से सम्बन्धित है। पाँचवे से आठवें निर्माण काल के पुरावशेष इससे सम्बद्ध है। ब्लैक एण्ड रेड वेयर भी मिले हैं। इनको 885 ई0 पू0 से 605 ई0 के मध्य रखा गया है। तृतीय सांस्कृतिक काल में एन0 बी0 पी0 वेयर की प्रधानता है। निर्माण काल 9 से 16 तक इससे सम्बन्धित है। इसके 15वें निर्माणकाल से पुरूषमेध श्येनचिति मिली है। यह यज्ञ वेदी की तीसरी रक्षा प्राचीर की रक्षाभित्ति तथा इसकी समानान्तर दीवाल के द्वारा बनाए गये घेरे में स्थित थी। इस काल की तिथि 605 ई0पू0 से 45 ई0पू0 के मध्य निर्धारित हुई है। चतुर्थ काल में सत्रहवें से लेकर पच्चीसवें निर्माण काल तक आते है। रेड वेयर पात्र–परम्परा इस काल की प्रमुख पात्र–परम्परा है। इस काल की तिथि 45 ई0पू0 585 ई0 निर्धारित की गयी है।

पुरास्थल कौशाम्बी के दक्षिण–पश्चिमी कोने में यमुना नदी के तट पर एक प्राचीर से घिरे क्षेत्र को राजप्रासाद के नाम से चिन्हित किया गया है। उत्खननोंपरान्त यहाँ से 320 X 150 मीटर आकार की गढ़ी प्रकाश में आयी। इसके निर्माण की चार प्रमुख अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रथम काल में अनगढ़ पाषाण से वाह्य दीवाल की रचना की गयी। इसमें विविध आकार–प्रकार के पत्थर, चूने, बालू के गारे से जोड़कर बनाये गये थे। दीवाल के साथ लगभग 1050 मीटर मोटा आवासीय जमाव था, जिसे प्राक् उत्तरी कृष्णार्जित (एन0बी0पी0) पात्र–परम्परा काल के अन्तर्गत रखा गया है।

द्वितीय काल में दीवाल के ऊपर गढ़े हुए पत्थरों से दीवाल निर्मित की गयी, जिसके बाहरी ओर 66 X 53 X 20 सेमी0 के प्रस्तर खण्ड लगे थे और बीच में अनगढ़ पत्थर थे। आयताकार बुर्ज भी इसी काल में जोड़ा गया। यहाँ से द्वितीय शताब्दी ई0पू0 की ब्राह्मी लिपि में एक लेख भी मिला है। द्विस्कन्ध बाणाग्र भी मिला है। तृतीय काल में विनाश के तुरन्त बाद ही राजप्रासाद का पुननिर्माण हुआ, किन्तु इस बार निर्माण–पद्धति तथा दिक्–विन्यास में अन्तर आया। चहारदीवारी में अब बाहर की ओर ईंटों का और अंदर भराव हेतु पाषाण का प्रयोग होने लगा। किनारे के बुर्जो को बड़ा किया गया। चतुर्थ काल यमुना नदी की ओर निर्माण कार्य के लिए महत्वपूर्ण है। इस काल में मात्र पुरानी ईंटों का प्रयोग मिलता है। अनगढ़ पत्थरों का प्रयोग किया गया, किन्तु भद्देपन छिपाने के लिए मोटा प्लास्टर लगाया गया। इस काल से 'मेहराब' के साक्ष्य मिले हैं। ऐतिहासिक जगत में एक नया तथ्य कौशाम्बी से प्राप्त मेहराब ने जोड़ दिया। इसके पहले यह मान्यता थी कि मेहराब निर्माण की तकनीक अरबों के आगमन के बाद भारत में विकसित हुई।

कौशाम्बी के राजमहल क्षेत्र के उत्खनन से उपलब्ध पुरावशेषों से यह संकेत मिलता है कि प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी में कुषाण युग में भारत में इस तरह के मेहराब बनने लगे थे। इस पुरास्थल से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों से इंगित होता है कि निचले गंगा–यमुना दोआब में मानव का वास–स्थल छठीं शताब्दी ई0पू0 से गुप्त काल तक निरन्तर रहा।

कौशाम्बी पुरास्थल से राममित्र, प्रियमित्र तथा ज्येष्ठ गुप्त के प्रथम शताब्दी ई0पू0 के ताम्र सिक्के प्राप्त हुए।[20] यहीं से गंधिको के सिक्के,[21] शुगवर्मा, शिवमित्र, भीममित्र, वचमित्र और शेषदत्त नामक कौशाम्बी राजवंशो के सिक्के मिले। यहीं से शुंग कालीन ब्राह्मी लिपि में नगर का नाम 'कौशाम्बी' लिखा हुआ है, इस पर लक्ष्मी एवं वृषभ की आकृति बनी हुई है।[22] ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ प्रथम शताब्दी ई0पू0 का एक मुद्रा लेख मिला है, जिसमें धनभूति नाम उत्कीर्ण है। कृष्ण दत्त बाजपेयी ने इस धनभूति की पहचान भरहुत अभिलेख के राजा

धनभूति–1 के रूप में की है। चिकनी मिट्टी की एक नक्काशीदार मुहर भी मिली है, जिस पर 300 ई0 की ब्राह्मी लिपि में 'यक्ष–धनसरी' नाम का अंकन हुआ है।[23]

कौशाम्बी पुरास्थल से प्राप्त ताम्र सिक्कों से चार नये शासकों सूर्यमित्र, विश्वमित्र, शिवमित्र तथा शिवदेव की पहचान की गयी।[24] ब्राह्मी लिपि में 'साथामित्था' नामधारी चिकनी मिट्टी की एक मुहर मिली है। दो वर्गाकार ताम्र सिक्का मिला है, जिस पर चारों ओर ब्राह्मी लिपि में 'कसाविसा' नगरीय नाम अंकित है। कौशाम्बी के शासक जेठ मित्र का एक सिक्का मिला है, जिसके पृष्ठ भाग पर एक वाजि का अंकन है।[25] इस पुरास्थल के समीपवर्ती क्षेत्र से 900 सिक्कों की एक निधि तथा 17 आहत ताम्र मुद्रा मिली।[26] अजय मित्र शास्त्री के व्यक्तिगत प्रयासों से राजा कोकदेव के एक ऐसे सिक्के की पहचान की गयी, जो कौशाम्बी से प्राप्त हुआ। ध्यातव्य है कि राजा कोकदेव का नाम अन्य किसी स्रोत से ज्ञात नहीं हुआ है। शास्त्री के इसी संग्रह से कौशाम्बी के एक अज्ञात नृप विजयानंदिन के नौ ताँबे के सिक्कों को पहचाना गया।[27]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग की ओर से वी0डी0 मिश्रा, जे0एन0 पाण्डेय, जे0एन0 पाल, एम0सी0 गुप्ता, बी0सी0 शुक्ला और ए0के0 दुबे ने 1997–98 में संयुक्त रूप से कौशाम्बी जनपद में सर्वेक्षण कार्य किया, परिणामतः पाषाण काल से लेकर पूर्व मध्य काल तक के अनेक पुरास्थल प्रकाश में आये। मंझनपुर तहसील के अर्का महावरिन नामक ग्राम से मध्यपाषाणिक पाषाणोपकरण मिले, जबकि बिदाँव गाँव से उत्तरी कृष्ण पालिस मृद्भाण्ड (एन0बी0पी0 वेयर) तथा इससे सम्बद्ध मृद्भाण्ड प्राप्त हुए।[28]

निचले गंगा–यमुना दोआब में इलाहाबाद जनपद से प्रकाशित पुरास्थलों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह इस दोआब का अन्तिम जनपद है, जिसका गौरमयी इतिहास अति प्राचीन है। पहले यह 'प्रयाग' के नाम से प्रसिद्ध था, किन्तु मुगल शासक अकबर ने इसका नाम बदल कर इलाहाबाद कर दिया। साहित्यिक, पुरातात्त्विक और विदेशी यात्रियों के विवरणों से प्राप्त स्रोतों से इस जनपद का प्रागैतिहास एवं इतिहास उजागर हुआ है। अब तक इस जनपद में समय–समय पर पुरातात्त्विक सर्वेक्षण एवं उत्खनन कार्य किये गये हैं, जो अनुवर्ती पंक्तियों में अवधेय हैं।

बी0बी0 लाल ने 1955–56 में गंगा नदी के बाएं तट पर स्थित एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा से संबंधित सिंगरौर नामक स्थल की खोज की, इसकी पहचान रामायण में वर्णित श्रृंगवेरपुर नामक स्थान से की।[29] अग्रवर्ती वर्षों में एस0सी0 काला ने इस जनपद के अनेक पुरास्थलों की खोज की। इनमें फूलपुर के महनीडीह से एन0बी0पी0 वेयर के खण्डितांश तथा गुप्तकालीन विखण्डित मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। सोराँव तहसील के उचडीहा नामक स्थल से आठवीं सदी के एक द्वार के पाँच खण्ड पाए गये।[30] जी0आर0 शर्मा ने इलाहाबाद जनपद के अनेक प्राचीन स्थलों की खोज किया। इनमें प्रमुख रूप से द्रौपदी घाट, चिल्ला, गोविन्दपुर, सलोरी, भारद्वाज आश्रम, दरियाबाद और मीरापुर शामिल हैं। सलोरी से प्राप्त ब्लैक एण्ड रेड वेयर एंव एन0बी0पी0 वेयर गोविन्दपुर से प्राप्त मृद्भाण्डों से समानता परिलक्षित करते हैं। भारद्वाज आश्रम से कुषाणकालीन कटोरे फुहारा यंत्र प्राप्त हुए। दरियाबाद एवं मीरापुर से अत्यधिक संख्या में एन0बी0पी0 वेयर, रेड वेयर एवं ग्रे वेयर के ठीकरे मिले हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पी0 कुमार खसनवी ने जनपद में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण किया, जिससे झूँसी, लच्छामीर, साथर, जलालपुर स्रिंगरौर एवं कड़ा से पुरावशेष मिले। झूँसी से एक परिखा, एक सुरक्षा प्राचीर, एन0बी0पी0 वेयर परम्परा के कटोरे, थालियाँ तथा मानव एवं पशु मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई। जी0आर0 शर्मा ने अपने पुरातात्त्विक अनुसंधानों को जारी रखते हुए वी0एस0दूबे, डी0 मण्डल, बी0बी0 मिश्र और वी0डी0 मिश्र को साथ लेकर बेलन, स्योटी, तुण्डियारी नदी घाटियों का विस्तृत सर्वेक्षण किया। फलस्वरूप अनेक पुरास्थल प्रकाश में आये। देवघाट नामक मध्यपाषाण युगीन पुरस्थल से एक ऐसा मूँगा मिला, जो मध्यपाषाण युगीन परम्परा का स्मरण कराता है। स्योटी एवं तुण्डियारी नदियों के मध्य स्थित पुरास्थलों से अनेक माइक्रोलिथ प्रकाशित हुए। देवघाट तथा रामगढ़ से प्राप्त शैलाश्रयों में शिकार करते, नृत्यरत एवं अन्य क्रियात्मक गतिविधियों में संलिप्त चित्र पाये गये हैं। बेलन घाटी–स्थित कोटिया से संगोरा तथा सिस्ट प्रकार की महापाषाण समाधियाँ मिली है।[31]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने निचले गंगा–यमुना दोआब के पुरातत्त्व को उद्घाटित करने का प्रयास जारी रखा। यहाँ के जी0आर0 शर्मा ने अपनी टीम के साथ टोंस, बेलन, स्योटी नदी घाटियों और इससे सम्बद्ध लपरी, लोंहदा, जोगिया, नदोह, बहुहवा एवं भरूहवा जैसी घाटियों का विस्तृत एवं सुव्यवस्थित सर्वेक्षण किया। 10306 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में किये गये अनुसंधानों से जो पुरास्थल प्रकाश में आये, उनसे 1. प्रारम्भिक, मध्य एवं उत्तरवर्ती पाषाण काल, 2. ब्लेड एवं क्रोड से सम्बद्ध लघु पाषाणोकरण, 3. चित्रित शैलाश्रय और 4. वृहत्पाषाणिक समाधियाँ दृष्टिगत हुई। 1966–67 में ही चोपनीमाण्डो (अक्षांश 24^0, 55′ 30″ उ0, देशान्तर 82^0, 4′ 45″ पू0) की खोज वी0 डी0 मिश्र ने किया। मेजा तहसील में स्थित चोपनीमाण्डो बूढ़ी बेलन नदी के बाएं तट पर स्थित है। मिश्रा के बाद 1978–79 से 1981–82 के मध्य अपेक्षाकृत विस्तृत पैमाने पर जी0आर0 शर्मा के निर्देशन बी0बी0 मिश्रा ने उत्खनन करवाया। उत्खननोपरान्त मध्यपाषाण काल के 3 सांस्कृतिक उपकालों के विषय में जानकारी हुई। दूसरे उपकाल को मध्यपाषाणिक उपकरण सामग्री के आधार पर द्वितीय 'अ' तथा 'ब'

में विभक्त किया गया। उपकाल (1) को अनुपुरापाषाण काल, उपकाल (2) का 'अ'– आरम्भिक मध्यपाषाण काल तथा 'ब' प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल का माना गया। तीसरा उपकाल विकसित मध्यपाषाण काल या आद्य नवपाषाण काल का है। विकसित मध्य पाषाण काल या आद्य नवपाषाण काल चोपनीमाण्डो का तृतीय एवं अन्तिम उपकाल है। इस उपकाल में 40 सेमी0 मोटे सांस्कृतिक जमाव से ज्यामितीय माइक्रोलिथ के साथ–साथ हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड भी मिले हैं। प्रमुख उपकरण प्रकारों में समानान्तर तथा कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, चान्द्रिक, त्रिभुज, विषमबाहु समलम्ब चतुर्भुज, खुरचनी आदि को चर्ट और चाल्सेडनी पर बनाया गया है। हस्तनिर्मित मृद्भाण्डों में रेड वेयर तथा ग्रे वेयर परम्परा के छोटे–छोटे कटोरे तथा कलश प्राप्त हुए हैं।

जी0 आर0 शर्मा ने पुरातात्त्विक अनुसंधान कार्य को जारी रखते हुए 1970–71 में बेलन घाटी का पुनः सर्वेक्षण किया, फलस्वरूप आरम्भिक, मध्य एवं परवर्ती पाषाणयुगीन और उच्च पुरापाषाणयुगीन अनेक पुरास्थल प्रकाश में आये। इसके अलावा अनेक चित्रित शैलाश्रय, नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक पुरास्थल चिन्हित किए गये। बेलन घाटी के आधार एवं स्तरों से अनेक पशु जीवाश्म भी मिले। बेलन घाटी के पेअरी पुरास्थल से बेधक, खुरचनी एवं चान्द्रिक पाषाणोपकरणों से सम्बद्ध परवर्ती स्थल अमिलिया, पेअरी और रामगढ़वा में पाये गये। मेजा तहसील के मझियारी नामक पुरास्थल से नवपाषाण काल के उपरण प्राप्त हुए। बेलन घाटी के गहन सर्वेक्षण से कोलडिहवा तथा पंचोह जैसे ताम्र पाषाणिक पुरास्थल भी प्रकाश में आए।[32]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में अनेक पुरास्थलों का सर्वेक्षण किया गया तथा 1971–72 में बी0बी0 मिश्रा द्वारा कोलडिहवा (अ0 24^0 54'3 उत्तरी, दे0 $82^0$2' पूर्वी) का उत्खनन करवाया गया। वैसे यहाँ का टीला तो 1964 में ही प्रकाश में आ गया था, तब यह 500 X 200 मी0 आयताकार था, परन्तु बरसाती नालों के कटाव के कारण यह कई भागों में विभाजित हो गया। इनमें से पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी टीलों पर 1972–73 से 1975 के मध्य उत्खनन हुआ, फलस्वरूप तीन सांस्कृतिक कालों– (1) नवपाषाण काल (2) ताम्रपाषाण काल और (3) आरम्भिक ऐतिहासिक काल (लौह युगीन संस्कृति) के प्रमाण मिले। 45 सेमी0 मोटे नवपाषाणिक जमाव से पता चलता है कि यहाँ के नवपाषाणिक मानव ने हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड, घर्षित उपकरणों, गोलाकार समन्तात वाली छोटी कुल्हाड़ियाँ, नवपाषाणिक ब्लेड तथा लघु पाषाणोपकरणों का प्रयोग किया था। यहाँ से चार प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं– डोरीछाप या कार्ड इम्प्रेस्ड, खुरदरे (रस्टीकेटेड) बर्निश्ड रेड वेयर और बर्निस्ड ब्लैक वेयर। नवपाषाणिक सांस्कृतिक स्तर से एक देशी (पालतू) चावल प्राप्त हुआ था, जिसकी पहचान ओराइजा सटाइवा किस्म के रूप में की गयी है। नवपाषाणिक संस्कृति के साथ ही साथ यहाँ से ताम्रपाषाणिक और लौह कालीन संस्कृतियों से संबंधित मृण्पात्र और उपकरण भी प्राप्त हुए हैं।

जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में ही डी0 मण्डल जे0 एन0 पाल तथा कमलाकर ठाकुर ने जनपद के मेजा तहसील में नवीन तथा बूढ़ी बेलन के संगम पर स्थित महगड़ा[33] (अ0 $24^0$54'50"उ0; दे0 $82^0$3'30" पूर्वी) का उत्खनन 1976–77 और 1977–78 में करवाया। उत्खननोपरान्त प्रकाश में आये 2.60 मी0 मोटे सांस्कृतिक जमाव को निर्माण के 6 उपकालों में विभाजित किया गया। सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययनोपरान्त पुराविदों ने बताया कि महगड़ा एकाकी सांस्कृतिक पुरास्थल है, जो नवपाषाण काल से संबंधित है। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों में डोरी छाप, खुरदुरे, चमकाए लाल और काले मृण्पात्र, ब्लेड चान्द्रिक, त्रिभुज, अस्थिवाणाग्र, पाषाण के छोटे–छोटे मनके, मछलियों, मवेशियों और चिड़ियों की हड्डियाँ आदि प्रमुख हैं। कोलडिहवा के समान महगड़ा से भी एक निश्चित क्रम–विन्यास में स्तम्भ गर्त मिले हैं। यहाँ उत्खनन से 20 झोपड़ियों के प्रमाण मिले हैं। इनके फर्श पर मृद्भाण्डों के टुकड़े, गोलाकार समंतांत वाली नवपाषाणिक प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ, हथौड़े, गदाशीर्ष, सिल–लोढ़े, गोफन पाषाण, माइक्रोलिथ्स मिट्टी–निर्मित गुरिया तथा पशुओं की अधजली हड्डियाँ मिली हैं। यहाँ के उत्खनन से पशुबाड़ा भी मिला है।

इसके अलावा जी0आर0 शर्मा ने 1975–76 में पंचोह का भी उत्खनन करवाया, जो बेलन नदी के दायें तट पर स्थित है। 60 सेमी0 मोटे जमाव से नवपाषाणिक संस्कृति के कार्ड इम्प्रेस्ड वेयर एवं हल्के लाल रंग के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए। इसके अलावा बेसाल्ट–निर्मित लघु कुल्हाड़ियाँ तथा चर्ट, चाल्सेडनी, कार्नेलियन पर निर्मित क्रोड, फलक, कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, खुरचनी, बेधक, चान्द्रिका, चतुर्भुज, त्रिभुज, सिल–लोढ़े एवं मनके आदि मिले।

श्रृंगवेरपुर नामक पुरास्थल जनपद में इलाहाबाद–उन्नाव मार्ग पर उत्तर–पश्चिम दिशा में लगभग 36 किमी0 दूर सिंग्रौर गाँव में गंगा नदी के वाम तट पर अवस्थित है।[34] टीले की सामान्य धरातल से ऊँचाई लगभग 10 मीटर है। इस पुरास्थल का उत्खनन "रामायण में वर्णित प्राचीन स्थलों के पुरातत्त्व" नामक राष्ट्रीय योजना के आधार पर बी0बी0 लाल ने 1977–86 तक अपने सहयोगियों की सहायता से करवाया। फलस्वरूप द्वितीय सहस्राब्दी ई0पू0 के अन्तिम चरण से लेकर मध्य काल तक पुरावशेष प्राप्त हुए, जिन्हें 7 कालों में विभाजित किया गया।

प्रथम सांस्कृतिक काल ओ0सी0पी0 (गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति) से संबंधित है। इस स्तर से सरकण्डों की छाप वाले मिट्टी के जले हुए टुकड़े, मिट्टी का चक्रिक खण्ड एवं कार्नेलियन के फलक का एक खण्डित टुकड़ा प्राप्त हुआ है। इसे 1050 से 1000 ई0पू0 का माना गया। द्वितीय सांस्कृतिक काल में ब्लैक एण्ड रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर एवं पालिस्ड ग्रे वेयर की प्रधानता है। हड्डी का एक लटकन तथा जैस्पर एवं मिट्टी के मनके महत्वपूर्ण पुरावशेष हैं। इन्हें 950–700 ई0 पू0 का माना गया। तृतीय सांस्कृतिक काल एन0बी0 वेयर परम्परा से संबंधित है। अन्य पुरावशेष भी इस स्तर से मिले हैं, जिसे 700–250 ई0पू0 के बीच रखा गया है। चतुर्थ काल को दो उपकालों में विभाजित किया गया है। रेड वेयर, शुंगकालीन मृण्मूर्तियाँ, अयोध्या के शासकों के सिक्के इस काल से मिले हैं। मुख्य टीले के उत्तर–पूर्व में पकी हुई ईंटों से निर्मित तालाब के प्रमाण प्राप्त हुए है। इसकी उत्तर–दक्षिण लम्बाई 200 मी0 है। उत्तर दिशा में जल के लिए प्रवेश द्वार तथा दक्षिण में निकास द्वार बना हुआ था। कुषाण काल में जो भवन बने, वे पकी ईंटों के ही थे। इस स्तर को 250–200 ई0पू0 का माना गया। पंचम काल का निर्धारण गहरे लाल रंग के मृद्भाण्ड (रेड वेयर), गुप्त शैली की मृण्मूर्तियाँ तथा खण्डित ईंटों के आधार पर किया गया है, जो 300–600 ई0 के हैं। षष्ठम काल में गाहड़वाल वंशीय शासक गोविन्द चन्द के 13 चाँदी के सिक्के मिले, जिन्हें कुछ आभूषणों के साथ एक बर्तन में रखा गया था। इस काल को 600–1300 के मध्य निर्धारित किया गया। श्रृंगवेरपुर का सातवां काल 17वीं–18वीं शताब्दी का है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने विवेच्य क्षेत्र के अन्तर्गत जनपद इलाहाबाद में पुरातात्त्विक अनुसंधान कार्यों को जारी रखा। जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में टीम ने अहेरी नामक स्थल से अनुपुरापाषाण कालीन उपकरणों को खोज निकाला। इनमें प्रमुख रूप से बड़े कुण्ठित ब्लेड, कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, खुरचनी, बेधक, ब्यूरिन, चान्द्रिक, क्रोड तथा खण्डित फलक प्राप्त हुए। शिमला उच्च अध्ययन संस्थान और भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के बी0बी0 लाल एवं के0एन0 दीक्षित ने भी जनपद में महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक अनुसंधान किया। इस टीम ने 1978–79 और 1982–83 में भारद्वाज आश्रम का उत्खनन करवाया, जिससे दो सांस्कृतिक कालों का प्रमाण मिला। प्रथम काल ब्लैक स्लिप्ड वेयर एवं एन0बी0पी0 वेयर से संबंधित है। द्वितीय काल गुप्ताकालीन है। इस स्तर से स्त्री मृण्मूर्तियाँ एवं बर्तन पाये गये है। यहाँ से गंगा और यमुना की आकृति युक्त मुद्रायें भी मिली हैं, जिस पर टूटा–फूटा मुद्रा लेख है, जिसमें 'परमभट्टारक' शब्द पठनीय है।[35]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग की ओर से राधाकान्त वर्मा, विद्याधर मिश्र, जय नारायण पाण्डेय, जगन्नाथ पाल ने विवेच्य क्षेत्र के इलाहाबाद जनपद में 1983 में विस्तृत पुरातात्त्विक सर्वेक्षण कार्य किया। फलस्वरूप बारा तहसील से दो मध्यपाषाणिक पुरास्थल तथा इसी तहसील के भैदपुर ग्राम में एक शैलाश्रय पर प्रकाश पड़ा। इस शैलाश्रय के पृष्ठीय सर्वेक्षण के द्वारा चर्ट, चाल्सेडनी पर निर्मित माइक्रोलिथ मिले। यहीं से त्रिभुज, कुठित और पुनर्गठित ब्लेड भी मिला।[36] इसी विश्वविद्यालय के बी0बी0 मिश्रा ने अपने सहयोगी के0 ठाकुर के साथ 1985–86 ई0 में खजुरी का उत्खनन करवाया। यह पुरास्थल बेलन नदी के दायें तट पर स्थित है, जिसका विस्तार उत्तर–दक्षिण 244 मीटर तथा पूर्व–पश्चिम 213 मीटर है। यहाँ का कुल आवासीय जमाव 2.20 मीटर मोटा है, जिसे 10 स्तरों में विभाजित किया गया है। इस जमाव को दो सांस्कृतिक काल में विभक्त किया गया है– (1) ताम्रपाषाणिक काल (कोलाडिहवा संस्कृति) और (2) प्रारम्भिक लौह युग (कोटिया संस्कृति। यह विचित्र संयोग है कि इस पुरास्थल के सभी काल के स्तरों से कौड़ियाँ पायी गयी हैं, इन कौड़ियों का प्रयोग क्रय–विक्रय हेतु किया जाता रहा होगा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वी0डी0मिश्र, जे0एन0पाल और मानिक चन्द गुप्ता के कुशल निर्देशन में 1995, 1999 और 2002 में झूँसी (प्रतिष्ठानपुर) का उत्खनन हुआ।[37] इलाहाबाद से 7 किमी0 पूर्व दिशा में गंगा–यमुना संगम पर बसा यह पुरास्थल कई टीले के रूप में विस्तृत है। यहाँ समुद्रकूप नामक टीला सबसे अधिक ऊँचा तथा सुरक्षित स्थिति में है। उत्खननोपरान्त प्राप्त 6 सांस्कृतिक कालों के जमाव से निचले–गंगा यमुना दोआब के सांस्कृतिक अनुक्रम पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है।

झूँसी का प्रथम काल नवपाषाणिक संस्कृति के रूप में ज्ञात है। इस स्तर से हस्त निर्मित डोरी छाप मृद्भाण्ड, खुरदुरे तथा चमकदार काले रंग के मृद्भाण्ड, लघुपाषाण उपकरण, लोढ़े के खण्डित अंश तथा पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं। यहाँ का द्वितीय काल प्री–एन0बी0पी0 संस्कृति का है। इसे दो उपकालों– (अ) ताम्रपाषाणिक और (ब) लौह कालीन में विभक्त किया गया है। 2अ काल में लोहे की अनुपस्थिति है। परन्तु 2ब उपकाल में लोहा प्राप्त होने लगता है। प्रमुख पात्र–परम्पराओं में ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर एवं सम्बद्ध रेड वेयर के साक्ष्य मिले हैं। पात्रों में साधार कटोरे, गहरे कटोरे, उन्नतोदर किनारे के कटोरे, टोंटीदार कटोरे आदि की गणना की जा सकती है। इसी धरातल से स्तम्भगर्त, चूल्हे तथा पशुओं की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इन पुरावशेषों से संबंधित काल को 2000 ई0पू0 से 1000 ई0 पू0 के बीच निर्धारित किया गया है। यहाँ का लौह कालीन जमाव एन0बी0पी0 संस्कृति का है। इस जमाव से एन0बी0पी0 मृण्पात्र, लौह एवं ताम्र वस्तुएँ, उपरत्नों तथा मिट्टी के मनके, हड्डी की वस्तुएँ और जली अवस्था में अनाज मिले हैं।

इस जमाव के ऊपरी सतह से पकी हुई ईंटें प्राप्त हुई हैं। पुराविदों ने यह सम्भावना व्यक्त किया है कि यहाँ भीषण अग्निकाण्ड हुआ था। इस सांस्कृतिक काल से प्राप्त पुरावशेषों को 700 ई0पू0 से 300 ई0पू0 के बीच निर्धारित किया गया है। एन0बी0पी0 संस्कृति के बाद यहाँ का चौथा सांस्कृतिक काल शुंग–कुषाण कालीन

संस्कृति का है। शुंगयुगीन स्तर से छापयुक्त पात्र, उपरत्नों, मिट्टी के मनके, मृण्मूर्तियाँ, पकी ईटों की जली हुई दीवालें तथा जला हुआ फर्श प्राप्त हुआ है। कुषाण कालीन जमाव से कुषाण पाटरी, मिट्टी, लौह तथा ताम्र की वस्तुएँ उपरत्नों तथा मिट्टी के बने मनके आदि मिले हैं। कुछ लेखयुक्त मुहर भी प्राप्त हुई है। प्राप्त पुरावशेषों को पुराविदों ने 200 ई0पू0–200 ई0 के मध्य रखा है। यहाँ का पाँचवां जमाव गुप्तकालीन संस्कृति का है। यहाँ से गुप्तकालीन पात्रों के अलावा मृण्मूर्तियाँ, तराशी हुई ईटे, उपरत्नों तथा मिट्टी के मनके हड्डी, लोहे, ताम्र की वस्तुएँ तथा लेखयुक्त मुहरें मिली हैं। इस धरातल को 400–500 ई0 के मध्य का माना गया है। यहाँ का सबसे अंतिम सांस्कृतिक काल 10वीं से लेकर 15वीं शताब्दी का है।[38]

लखनऊ क्षेत्र की सर्वे टीम ने एस0 जमाल हसन के निर्देशन में इन्दु प्रकाश, ए0ए0 हाशमी, लिलि धसमाना, राजीव द्विवेदी, संगीता चक्रवती आदि ने भीटा पुरास्थल का 1995–96 और 1996–97 में सीमित पैमाने पर उत्खनन कार्य करवाया।[39] यद्यपि कि इसके पूर्व 1872 में सर्वप्रथम अलेक्जेण्डर कनिंघम ने इसके पुरातात्त्विक महत्व को बताया, इसी से उत्साहित होकर सर जॉन मार्शल ने परीक्षण उत्खनन कराया, लेकिन उनके उद्देश्य अधुरे रह गये।

शिन्दे की टीम ने उत्खननोपरान्त यहाँ के एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा के स्तरों से तीन प्रावस्था का निर्माण करने वाली क्रिया कलापों को उजागर किया। यहाँ पर पकी ईटों का इस्तेमाल किया गया है, जिसका आकार 50 × 30 × 7 सेमी0 है। यहाँ ऐसे कमरे बने हैं, जिसमें खिड़कियों की उत्तम व्यवस्था है, इस काल का मुख्य लक्षण है। कुटी हुई फर्श तथा ढकी हुई नालियाँ भी मिली हैं। गढ़ी के टीले पर आयताकार दीवालें और जलकुण्ड के साक्ष्य मिले है। अन्य पुरावशेषों के साथ ताँबे के सिक्के, एण्टीमनी–छड़, नुकिली अस्थियाँ, सूईयाँ एवं अर्द्धरत्न पाषाण भी मिले हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति पुरातत्त्व विभाग के जे0एन0 पाल के निर्देशन में 2005 में झूँसी से लगभग 7 किमी0. उत्तर दिशा में स्थित हेतापट्टी (अ0 25^0 24′ उत्तरी ; दे0 81^0 52′ पूर्वी देशान्तर) का उत्खनन करवाया।[40] परिणामस्वरूप यहाँ से नवपाषाण काल के पशुओं की हड्डियों से निर्मित नुकिले तीर, आग्नेय पाषाण की पॉलिशयुक्त कुल्हाड़ी एवं क्वार्टजाइट के सिल–लोढ़े प्राप्त हुए हैं। इस धरातल से हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड भी प्राप्त हुए, जिन्हे नवपाषाण काल से संबद्ध किया गया है। अन्य पुरावशेषों में पत्थर की तकली, अलंकृत मृद्भाण्ड, धनुष, बाण में इस्तेमाल किये जाने वाले तीर, मिट्टी एवं पाषाण के मनके आदि की गणना की जा सकती है।

इसी विश्वविद्यालय के जे0एन0पाण्डेय के प्रयासों से 'बालम बघाड़ा'(अ0 25^0 23′ उत्तरी ; दे0 81^0 51′ पूर्वी) नामक पुरास्थल के पुरातत्त्व पर प्रकाश पड़ा। यह पुरास्थल वर्तमान इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय से 2 किमी0 दूर आई0इ0आर0टी0 के अयोध्या हॉस्टल के समीप स्थित है। सर्वप्रथम यहाँ से बालुकाश्म निर्मित 105 सेमी0 लम्बा कोल्हू खोजा गया। पुराविदों के अनुसार यह कोल्हू बारहवीं शताब्दी ई0 का है। यहाँ मात्र 2 से 3 मीटर की खुदाई करने पर मानव सन्निवेश के प्रमाण प्राप्त होने लगते है। ब्लैक एण्ड रेड एवं एन0बी0पी0 वेयर के खण्डित भागों एवं प्राप्त अन्य पुरावशेषों के आधार पर उत्खननकर्ता ने इसे गाहड़वाल काल से समीकृत किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त के विवेचनोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि निचले गंगा–यमुना दोआब का क्षेत्र अपनी उर्वर भूमि एवं आर्थिक सम्पन्नता के कारण प्रागैतिहासिक युग से ही निरन्तर सांस्कृतिक विकास में संलग्न रहा है। इस विकास के प्रतीक विभिन्न कालों में विद्यमान रहे हैं। जो वर्तमान में भी पुराविदों, इतिहासविदों, शोध अध्येताओं एवं विद्यार्थियों के कुतूहल एवं आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। नवीनतम पुरातात्त्विक अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि यह दोआब क्षेत्र अपने गर्भ में पुरासम्पदा–भण्डार छुपाए हुए है। इसी लिए अभी इस क्षेत्र में पुरातात्त्विक अन्वेषणों के लिए अपार सम्भावनाएं हैं।

सन्दर्भ सूची

1. घोष, ए0 1956, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया नई दिल्ली, (पृ0 69,70,71)
2. तत्रैव 1957, तत्रैव, पृ0 29
3. तत्रैव 1961, तत्रैव, पृ0 67
4. तत्रैव 1965, तत्रैव, पृ0 70
5. तत्रैव 1969, तत्रैव, पृ0 69 और 76
6. तत्रैव 1973, तत्रैव, पृ0 47, 48
7. लाल, बी0बी0 1968, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 46,47
8. तत्रैव 1971, तत्रैव, पृ0 39, 52
9. थापर, बी0 के0 1979, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 31
10. तत्रैव 1981, तत्रैव, पृ0 101
11. एस0, अजय 1997, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 93, 94
12. आई0 ए0 ए0 आर0 2002, पृ0 28, 99, 103
13. घोष, ए0 1959, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ0 75
14. तत्रैव 1970, तत्रैव, पृ0 84
15. थापर, बी0 के0 1981, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 22, 23
16. मित्रा, देबाला 1983, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 68, 69
17. जोशी, एम0सी0 1992, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 116
18. सिंह, बी0पी0 1996, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 104
19. पाण्डेय,जे0एन0 2000,पुरातत्त्व विमर्श,प्राच्य विद्या संस्थान इलाहाबाद,पृ0 630
20. घोष, ए0 1961, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 33, 34
21. घोष, ए0 1964, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 50, 95
22. तत्रैव 1965, तत्रैव, पृ0 64
23. तत्रैव 1967, तत्रैव, पृ0 74
24. देशपाण्डे, एम0एन0 1975, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 64
25. लाल, बी0बी0 1968, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 56, 65
26. थापर, बी0के0 1979, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 74
27. थापर, बी0के0 1980, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 72
28. IAAR 2003, पृ0 170, 171
29. घोष, ए0 1956, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 71
30. तत्रैव 1959, तत्रैव, पृ0 74
31. तत्रैव 1965, तत्रैव, पृ0 31, 32
32. देशपाण्डे, एम0 एन0 1974, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 35, 36

33. पाण्डेय, जे0एन0 2000, पुरातत्त्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, पृ0 343

34. तत्रैव, तत्रैव, पृ0 654

35. थापर, बी0के0 1981, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 56

36. नागराज राव, एम0एस0 1986, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, पृ0 85

37. वर्मा, राधाकान्त एवं नीरा 2003, पुरातत्त्व अनुशीलन भाग–2, परम ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 145, 146

38. चौबे, अखिलेश कुमार 2015, पूर्वी उत्तर प्रदेश की ताम्रपाषाणिक संस्कृतियाँ, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 76

39. कनिंघम, ए0 1871–72, आर्कियोलॉजिक सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम 3,

40. दैनिक जागरण, इलाहाबाद संस्करण 9 मई, 2005, पृ0 7 और यूनियन गवर्नमेंट (सिविल) मिनिस्ट्री ऑफ कल्चर रिपोर्ट नं0 18 (2013), पृ0 263